प्रवचन-१७ गाथा-२४ से २६ गुरुवार, ज्येष्ठ कृष्ण ७, दिनांक २५-०६-१९७०

साधुरूप से साधु मानकर, इसकी बात चलती है। पहले तो दर्शन होता है। उसे सम्यग्दर्शन (होता है)। आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु सर्वज्ञ भगवान ने देखी है, ऐसा आत्मतत्त्व, उसे सम्यग्दर्शन में भान होता है। आत्मा शुद्ध चैतन्य का अनुभव होता है। तदुपरान्त उसे आत्मा का ज्ञान होता है।

आज लेख आया है। कौन जाने क्यों डाला लगता है ? जैन गजट में। आत्मज्ञान, वही आवश्यक है। किसी ने लिखा है। भाई ने दिया। चन्दुभाई ने स्पष्टीकरण किया है। कोई मुनि है न ? वहाँ जाते हों और पैसे-वैसे देते हों तो उसका लेख लिया। जैन गजट में है। आत्मज्ञान की आवश्यकता। अभी इसकी आवश्यकता है। यह डाला क्यों ? कि भाई वहाँ जाते हों, वहाँ। पैसा-वैसा उगाहने। पैसा लेते हों तो लेख देना ही पड़े।

जिसे आत्मज्ञान हो। ज्ञान आया न ? आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप है, ऐसा उसे ज्ञान होता है। सम्यग्दर्शन हो और उसका ज्ञान हो। तदुपरान्त चारित्र हो। वीतरागदशा, जिसे अन्तर (में) तीन कषाय का नाश होकर प्रगट हुई हो, तप हो, इच्छानिरोधरूप भाव हो और विनय हो, विनय-कोमलता हो। मुनि अथवा पंच परमेष्ठी के प्रति उसे बहुत भाव होता है।

अथवा **इनमें जो भले प्रकार स्थित हैं,...** इनमें रहे और **सराहने योग्य हैं...** उन्हें साधु मानकर गुरुरूप से स्वीकार कर माननेयोग्य हैं। **अथवा भले प्रकार स्वस्थ हैं लीन हैं...** स्व-स्थ। आत्मा ज्ञानानन्द है, उसमें स्थ हैं - लीन हैं। देखो ! यह तत्त्वार्थश्रद्धान में वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के मार्ग में मुनिपना कैसा होता है, उसकी बात चलती है। **और गणधर आचार्य भी उनके गुणानुवाद करते हैं,...** गणधर, महामुनि पूर्व में हुए हों, उनके वे गुणगान करते हैं। परम्परा सन्त जो हुए, भगवान और भगवान के बाद, उनके वे प्रशंसक होते हैं। समझ में आया ? **अत: वे वन्दने योग्य हैं।**

मुमुक्षु : इतना सब कहाँ देखें, हम तो नग्न-दिगम्बर हैं या नहीं, इतना देखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। निषेध करते हैं। नग्न-दिगम्बर इतना नहीं। इसके लिये तो यह बात ली है। ऐई !

दूसरे जो दर्शनादिक से भ्रष्ट हैं और गुणवानों से मत्सरभाव रखकर विनयरूप नहीं प्रवर्तते हैं... लो, शान्ति से समझना। वीतरागमार्ग अनादि का यह भाव था और मुनि की बाह्य दिगम्बर दशा थी। ऐसे मुनि को, जो सम्प्रदाय में से भ्रष्ट हुए, वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना माननेवाले, वे इनकी विनय नहीं करते, वे अभिमानी हैं—ऐसा कहते हैं। किसकी? धर्मात्मा की। आत्मा का अन्तर ज्ञान-दर्शन-चारित्र है और बाह्य नग्न-दिगम्बर जैनदर्शन में होते हैं। दिगम्बर के अतिरिक्त साधुपद नहीं हो सकता, परन्तु अकेला दिगम्बर नहीं। अन्तर अनुभव, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप और विनयसहित (होते हैं)।

मुमुक्षु : दिगम्बर हैं, ऐसा कहो तो हम प्रसन्न होंवे परन्तु दर्शन-ज्ञान-चारित्र की बात आवे, तब उलझन होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो यह बात चलती है। यह आगे आयेगा। अकेला आचार, उसमें आयेगा। २६ गाथा। **आचार्य यथाजातरूप को दर्शन कहते आये हैं, वह केवल नग्नरूप ही यथाजातरूप होगा...** ऐसा नहीं। २६वीं गाथा, भावार्थ में चौथी लाईन। समझ में आया? मात्र नग्न तो अनन्त बार हुआ। उसमें क्या? भान बिना। परन्तु बात यह है कि अन्तर में आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और वस्तु की वीतरागता सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही, वैसा हो और उसकी दशा बाह्य में शरीर नग्न ही हो। दिगम्बर हो। उसे वस्त्र का धागा भी नहीं हो सकता। समझ में आया? अनादि का मार्ग यह है। उसको इसे जानना चाहिए, ऐसा कहते हैं।

(यहाँ कहते हैं) **जो दर्शनादिक से भ्रष्ट हैं...** वीतराग का ऐसा मार्ग अनादि सनातन है, उससे ये श्वेताम्बर आदि भ्रष्ट हुए। वे **गुणवानों से मत्सरभाव...** रखते हैं। ऐसे धर्मात्मा सन्त थे, उनका विनय नहीं करते और अभिमान रखते हैं। **वे वंदने योग्य नहीं हैं।** ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया? (गाथा) २३ (पूरी हुई।)

गाथा-२४

अब कहते हैं कि जो यथाजातरूप को देखकर मत्सरभाव से वन्दना नहीं करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि ही हैं –

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो।।२४।।

सहजोत्पन्नं रूपं दृष्ट्वा यः मन्यते न मत्सरी।
सः संयमप्रतिपन्नः मिथ्यादृष्टिः भवति एषः।।२४।।

जो देख सहजोत्पन्न रूप न मानता ईर्ष्यादि से।
वह भले संयम-युक्त पर स्पष्ट मिथ्यादृष्टि है।।२४।।

अर्थ – जो सहजोत्पन्न यथाजातरूप को देखकर नहीं मानते हैं, उसका विनय सत्कार प्रीति नहीं करते हैं और मत्सर भाव करते हैं, वे संयमप्रतिपन्न हैं, दीक्षा ग्रहण की है, फिर भी प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि हैं।।२४।।

भावार्थ – जो यथाजातरूप को देखकर मत्सरभाव से उसका विनय नहीं करते हैं तो ज्ञात होता है कि इनके इस रूप की श्रद्धा-रुचि नहीं है, ऐसी श्रद्धा-रुचि बिना तो मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। यहाँ आशय ऐसा है कि जो श्वेताम्बरादिक हुए वे दिगम्बर रूप के प्रति मत्सरभाव रखते हैं और उसका विनय नहीं करते हैं, उनका निषेध है।।२४।।

गाथा-२४ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जो यथाजातरूप को देखकर मत्सरभाव से वन्दना नहीं करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि ही हैं –

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो।।२४।।

यहाँ आचार्य महाराज – कुन्दकुन्दाचार्य अनादि वीतरागमार्ग और केवली का कहा हुआ स्वरूप, ऐसा जो आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, आत्मचारित्र, उस सहित की दशा जैनमार्ग

में, वीतरागमार्ग में, केवली के पन्थ में शरीर की दशा दिगम्बर थी। इसके अतिरिक्त यह भ्रष्ट होने के बाद दूसरे पन्थ निकले हैं। सेठी! कहते हैं, माता से जन्मा, ऐसी देह और अन्तर में रागरहित अनुभव की दशा, ऐसे मुनि को देखकर न माने, उसे न जाने, उसे बहुमान न दे। **उसका विनय सत्कार प्रीति नहीं करते हैं... मण्णए** इसमें से सब निकाला है। समझ में आया? विनय, सत्कार नहीं करते, वे **मत्सर भाव करते हैं, वे संयमप्रतिपन्न हैं, दीक्षा ग्रहण की है, फिर भी प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि हैं।** कठिन बात! समझ में आया?

***भावार्थ* – जो यथाजातरूप को देखकर...** महादिगम्बर सन्त, आत्मा के ज्ञान-दर्शन-चारित्रवाले। अकेले नग्न नहीं। ऐसे नग्न तो अनन्त बार हुए। जिनकी दशा भी अन्तर छठवें गुणस्थान के योग्य ऐसी वीतरागता प्रगट हुई है और बाह्य में अत्यन्त दिगम्बर (देह)। ऐसे जीव को देखकर मत्सरभाव से विनय नहीं करते। दूसरे अभिमानी (ऐसा मानते हैं कि) हम भी साधु हैं, हम महाव्रतधारी हैं, हमने भी दीक्षा ली है – ऐसा मानकर सच्चे सन्त की विनय और आदर नहीं करे तो प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि है। संयम प्रतिपन्न होता है। इन्द्रियदमन और बाह्य पालन करते हों तो भी प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि है। इसमें कोई सम्प्रदाय की अपेक्षा से बात नहीं है, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ ऐसा तत्त्व अनादि है।

जो यथाजातरूप को देखकर मत्सरभाव से उसका विनय नहीं करते हैं तो ज्ञात होता है कि इनके इस रूप की श्रद्धा-रुचि नहीं है, ऐसी श्रद्धा-रुचि बिना तो मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। यहाँ आशय ऐसा है कि जो श्वेताम्बरादिक हुए, वे दिगम्बर रूप के प्रति मत्सरभाव रखते हैं... भगवान के बाद छह सौ वर्ष में सनातन वीतरागमार्ग का जैनदर्शन, उसमें से श्वेताम्बर निकले, श्रद्धा से भ्रष्ट होकर वस्त्र रखकर मुनिपना मानने लगे। उनकी अपेक्षा से बात (ली) है यहाँ।

मुमुक्षु : पण्डितजी ने बहुत स्पष्ट किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डितजी ने स्पष्ट किया है। पाठ में भी यह है न, **संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी मण्णए ण मच्छरिओ** इसका अर्थ ही हुआ न! आहाहा! जिन्हें छठवीं, सातवीं भूमिका में आनन्द की दशा प्रगट हुई है, उन मुनि को तो नग्नदशा होती है, उन्हें वस्त्र-पात्र नहीं हो सकते। वस्त्र-पात्र होवे और अन्दर मुनिपना प्रगट हो, ऐसा कभी नहीं

हो सकता और वस्त्र-पात्र न हो तथा नग्नपना हो तो मुनिपना प्रगट होता है, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया ? बात बहुत (सूक्ष्म है)।

भगवान आत्मा... ऐसे सम्यग्दर्शन में-श्रद्धा में ही पहले यह आया हो कि मुनि हों, वे वीतरागी होते हैं, उन्हें दिगम्बरदशा होती है, उन्हें अट्ठाईस मूलगुण के, महाव्रतादि के विकल्प हों, ऐसा तो सम्यग्दर्शन होते ही भान में आ जाता है। गुरु का पद ऐसा चारित्र हो, उसे (भान में) आ गया होता है। समझ में आया ? जिसे इसकी खबर नहीं और ऐसे सन्तों को देखकर मत्सर रखता है। क्योंकि वह तो मानो हमारे साधु नहीं है, ऐसा करके श्वेताम्बर आदि साधु उनका आदर नहीं करते, विनय नहीं करते तो प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी हैं; वे जैन हैं नहीं।

मुमुक्षु : कैसे वन्दन कर सके ? गृहीतमिथ्यादृष्टि हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....पहले तो ऐसा का ऐसा चलता था न ? पहले तो उनके साधु थे, वे भी दिगम्बर मन्दिर जाते थे। पहले कहाँ अलग पड़े थे। फिर २५-५०, १०० वर्ष व्यतीत हुए, पश्चात् मन्दिर अलग बनाये। मार्ग तो ऐसा है। यह कहीं किसी के पक्षपात की बात नहीं है। समझ में आया ? अनादि सर्वज्ञ वीतराग केवलज्ञानी परमेश्वर का मार्ग चला आ रहा था, वह भगवान के पश्चात् छह सौ वर्ष तक तो मार्ग रहा। पश्चात् बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा। यह लेख तो इसमें नहीं परन्तु बारौठ में आता है। बारौठ समझे ? क्या कहते हैं ? भाटचारण नहीं। बारौठ अलग जाति है। क्या कहलाता है ? भाई ! ब्रह्मभट्ट कहलाता है। बनिया को सेठ कहा जाता है, लुहार को ठक्कर कहा जाता है, इसी प्रकार उसे ब्रह्मभट्ट कहा जाता है। अभी एक आया था न ? ब्रह्मभट्ट - बारौठ। काकूभाई। उसे यहाँ प्रेम है, वह तो बेचारा कहे, यह देवी-देवला की विपरीतता कहाँ घुस गयी ? जैन होकर देवी-देवला को मानना, यह तो मिथ्यात्व है। मैंने कहा, मिथ्यात्व ही है परन्तु भान बिना लोगों को कुछ खबर नहीं। समझ में आया ? उसे श्रद्धा में पक्का रखना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। जिसे सच्ची श्रद्धा करनी है, उसे तो ऐसे दिगम्बर मुनि अन्तरध्यानी, ज्ञानी, आनन्द में रमनेवाले और उन्हें दिगम्बर दशा ही होती है, ऐसे मुनि को जैनदर्शन में साधुरूप से स्वीकार किया है। इससे विरुद्ध माने तो वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। पण्डितजी ! यहाँ कहीं गुप्त रखने की बात नहीं है। आचार्य ने, कुन्दकुन्दाचार्य ने खुल्ला किया है।

यहाँ आशय ऐसा है कि जो श्वेताम्बरादिक... श्वेताम्बर मन्दिरवासी या यह स्थानकवासी या यह तेरापन्थी, ये तीनों ही जैनदर्शन में से भ्रष्ट होकर निकले हुए हैं। किसी व्यक्ति के प्रति वह (द्वेष) नहीं है, मार्ग ऐसा है। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने तो जो स्पष्ट बात थी, वह रखी है। श्रद्धा करो, सच्ची श्रद्धा तो करो, कहते हैं। चारित्र न लिया जा सके और तद्नुसार न हो तो भले (न हो) परन्तु श्रद्धा तो बराबर करो कि गुरु चारित्रवन्त तो ऐसे होते हैं। समझ में आया? यहाँ तो ठिकाना नहीं कुछ बाहर का और पाँच महाव्रत के विकल्प को चारित्र मानते हैं। है अचारित्र, पंच महाव्रत तो राग है। अचारित्र को चारित्र मानते हैं; आस्रव को संवर मानते हैं। (महाव्रत का राग) तो आस्रव है। समझ में आया? और सच्चा पन्थ जो यह वीतराग का पन्थ है, उसकी निन्दा करे तो आचार्य कहते हैं कि वह प्रगट मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया इसमें? इसमें कहीं सम्प्रदाय की बात नहीं, हों! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। दूसरा क्या हो? **दिगम्बर रूप के प्रति मत्सरभाव रखते हैं...** देखो न! लिखा है न, पण्डित जयचन्दजी हैं। जयपुर के हैं। ऐ सेठी! तुम्हारे गाँव के। पण्डित जयचन्दजी हो गये हैं न? जयपुर के। बहुत अच्छा लिखा है। समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था, सौ-सौ इन्द्र जिन्हें पूजते हैं, उन भगवान की यह वाणी है। सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं, उनके पास संवत् ४९ में कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। नग्न-दिगम्बर। आठ दिन रहकर यह सब शास्त्र रचे हैं। मार्ग ऐसा है, भाई! दूसरी गड़बड़ की हो, वह मार्ग नहीं है। आहाहा! भारी कठिन काम। सम्प्रदाय की श्रद्धा बैठी हो, वे कहें, हमारे स्थानकवासी के सिद्धान्त सच्चे हैं; वे मन्दिरमार्गी कहें - हमारे सिद्धान्त सच्चे हैं; तेरापन्थी कहे - हमारी मान्यता सच्ची है। श्वेताम्बर जैन परम्परा भगवान के साथ मिलाते हैं, स्थानकवासी भगवान के साथ मिलाते हैं, तेरापन्थी भी मिलाते हैं कि हमारा महावीर पहले ऐसा था। अरे...! भाई! यह तो परमेश्वर का कथन और वीतराग का स्वरूप ऐसा है।

जिसकी दशा सम्यग्दर्शन हो, तब उसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा यथार्थ होती है; विपरीत नहीं होती और साधु हो तब तो उसकी वीतरागदशा अन्दर में प्रगट हुई होती है। क्षण और पल में आनन्द में झूलते हुए शुद्धोपयोग में आकर शुभ में आते हैं। छठवें में

आवें तो जरा दया का, सुनने का विकल्प–राग उठता है। वह विकल्प छूटकर सातवें (गुणस्थान की) दशा शुद्धोपयोग में रमते हैं। एक अन्तर्मुहूर्त में जिन्हें हजारों बार शुद्धोपयोग की रमणता होती है। जिन्हें अन्दर निद्रा पौन सैकेण्ड की होती है। उनकी अन्तरदशा और बाह्य नग्नदशा को साधुपद कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कोई पक्ष का मार्ग नहीं है। वस्तु का स्वभाव ऐसा है। कहो, अमुलखभाई! ऐसा ही है। इनकी तो... बीस–पच्चीस वर्ष पहले, हों! परन्तु बोले ऐसा... समझ में आया?

वे दिगम्बर रूप के प्रति मत्सरभाव रखते हैं... दिगम्बर के मुनि और दिगम्बर के समकिती श्रावक, धर्मी को वे नहीं मानते, उनका आदर नहीं करते और द्वेष करते हैं। समझ में आया? वे प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं। **उसका विनय नहीं करते हैं, उनका निषेध है।** लो, वे लोग उसका विनय नहीं करते, इसका निषेध करते हैं। भाई! तुझे मार्ग की खबर नहीं है। मार्ग से भ्रष्ट होकर निकले हैं। दुष्काल पड़ा, तब वस्त्र का थोड़ा टुकड़ा रखकर उसमें से पूरा श्वेताम्बर पन्थ निकला है। स्थानकवासी उसमें से अभी पाँच सौ वर्ष पहले निकले हैं। तेरापन्थी दो सौ वर्ष पहले निकले हैं। वस्तु का ऐसा स्वरूप है। कहो, समझ में आया? सम्प्रदायवालों को ऐसा लगता है कि यह तो तुम्हारा सच्चा। सच्चा नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। हमारी–तुम्हारी यहाँ बात ही कहाँ है? बापू! आहाहा! जिसे अभी खबर ही नहीं। अष्टपाहुड़ तुम्हारे वहाँ उमराला में है या नहीं? किसी के पास होगा। है? होगा। अष्टपाहुड़ कुन्दकुन्दाचार्य का है। वहाँ होगा अवश्य, पुस्तक तो होगी।

गाथा–२५

आगे इसी को दृढ़ करते हैं –

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति।।२५।।

अमरैः वंदितानां रूपं दृष्टवा शीलसहितानाम्।
ये गौरवं कुर्वन्ति च सम्यक्त्वविवर्जिताः भवंति।।२५।।

सुर–वंद्य शील–सहित श्रमण को देख जो गारव करें।
विनयादि करते नहीं समकित हीन ही जानो उन्हें।।२५।।

***अर्थ* – देवों से वंदने योग्य शीलसहित जिनेश्वरदेव के यथाजातरूप को देखकर जो गौरव करते हैं, विनयादिक नहीं करते हैं, वे सम्यक्त्व से रहित हैं।**

***भावार्थ* – जिस यथाजातरूप को देखकर अणिमादिक ऋद्धियों के धारक देव भी चरणों में गिरते हैं, उसको देखकर मत्सरभाव से नमस्कार नहीं करते हैं, उनके सम्यक्त्व कैसा ? वे सम्यक्त्व से रहित ही हैं।।२५।।**

गाथा-२५ पर प्रवचन

आगे इसी को दृढ़ करते हैं – भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसे मुनि की श्रद्धा होती है और ऐसे मुनि को जो न माने, अनादर करे, वह मिथ्यादृष्टि है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसा बोले, कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व; साधु को कुसाधु माने (तो मिथ्यात्व)। आता है या नहीं ? माणेकलालभाई! आता है ?

मुमुक्षु : पच्चीस प्रकार के...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व में। मार्ग को कुमार्ग माने तो मिथ्यात्व; कुमार्ग को मार्ग (माने) तो मिथ्यात्व (ऐसा) बोले परन्तु उसमें एक भी बात सच्ची नहीं होती। अर्थ की खबर नहीं होती। मैं तो इसका अर्थ वहाँ पहले यह करता था, पाँचवाँ... आता है न ? ...दो दिन की होती है न ? क्या कहलाता है ? दो दिन नहीं पढ़ा जाए, ऐसा होता है न ? चौदस और पाखी। असज्झाय के दिन होते हैं। असज्झाय समझे न ? तुम्हारे नहीं पढ़ा जाता। चौदस और पाखी। अषाढ़ शुक्ल चौदस और पाखी। तब इस पाँचवें श्रमणसूत्र का ही व्याख्यान में अर्थ करते थे, क्योंकि मुझे कुछ... मैंने कहा, यह क्या कहते हैं ? ....मिथ्यात्व को छोड़ा है और समकित अंगीकार किया है। समकित अर्थात् क्या ? प्रतिक्रमण में आता है या नहीं ? कितनी बार पहाड़े बोले होंगे शाम–सवेरे ? ....हराम कुछ इसके अर्थ का भान होवे तो। शाम–सवेरे पहाड़े बोलते जायें। आहाहा! बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर का कहा हुआ, देखा हुआ, जाना हुआ और

अनुभव करके कहा है। आहाहा! इसमें कुछ भी फेरफार माने तो वह श्रद्धा से भ्रष्ट है। जैन नहीं, मिथ्यादृष्टि है – ऐसा यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य फरमाते हैं। समझ में आया? देवीचन्दजी! दुनिया के साथ अनमेल तो लगता है परन्तु मार्ग ऐसा है, वहाँ क्या हो?

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति।।२५।।

अर्थ – **देवों से वंदने योग्य शीलसहित...** जिसके अन्तर में वीतरागस्वभाव जिन्हें प्रगट हुआ है, ऐसा कहते हैं। शील अर्थात् (यह) चारित्रशील। शीलपाहुड़ आगे आयेगा। जिन्हें वीतरागीदशा अन्तर अनुभव में प्रगट हुई है। वस्तु भगवान आत्मा वीतराग की मूर्ति ही आत्मा तो है। उसका आश्रय लेकर वीतराग का शीलस्वभाव, अकषाय आनन्दकन्द जिसकी दशा प्रगट हुई है, ऐसे मुनि **देवों से वंदने योग्य...** हैं। देव को भी वन्दनेयोग्य है। **जिनेश्वरदेव के यथाजातरूप को देखकर जो...** ओहो! ऐसे वीतरागभावी और बाह्य दिगम्बरदशा को देखकर विनयादि न करे। उनका विनय न करे, आदर न करे, बहुमान न दे, वह समकित से वर्जित है। **वे सम्यक्त्व से रहित हैं।** वे समकित से रहित मिथ्यादृष्टि हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

यह तो बहुत वर्षों में यह पढ़ा जाता है। (संवत्) २०१७ में पढ़ा गया था। मार्ग तो यह है। चार बार पढ़ा गया। पहले (संवत्) २००२ के वर्ष में पढ़ा गया। पश्चात् २०११ में, पश्चात् २०१७ में और यह २०२६ में। जाधवजीभाई! यदि पहले सुने तो भड़क जाए परन्तु अब तो बहुत सुननेवाले हैं। कन्धे पड़ी है बात। पूरा सम्प्रदाय घूमकर बदला तो कोई कारण होगा या नहीं? सम्प्रदाय में तो लोग बहुत मानते थे। समझ में आया? मार्ग यह नहीं है, कहा। भाई! वीतराग का यह साधुपना नहीं है, वीतराग का वेश नहीं है, ये वीतराग के शास्त्र कहे, वे यह शास्त्र नहीं है। श्वेताम्बर ने शास्त्र किये, वे नये रचे हैं, सब कल्पित रचे हैं। कठिन बात है, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : सौ वर्ष पहले निकल गये थे।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाद में। पहले से निकले, वे भ्रष्ट होकर निकले न ? कुन्दकुन्दाचार्य के होने से पहले सौ वर्ष पहले मार्ग निकल गया था।

मुमुक्षु : अधिक....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह फिर और विशेष (हुआ)। पहले से ऐसा तो है। साधुपना वस्त्रसहित मनवाया, कल्पित शास्त्र बनाये, मल्लिनाथ तीर्थंकर को स्त्री मनवाया, भगवान को रोग ठहराया, भगवान को आहार ठहराया। यह सब जैनदर्शन से अत्यन्त विरुद्ध है। समझ में आया ? ऐ.. धनजीभाई ! ऐसा मार्ग है। अब तो यहाँ सवा पैंतीस वर्ष जंगल में हो गये। अब तो बहुत सुननेवाले (हुए हैं)। सुजानमलजी !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो खबर है। यह तो सब मन्दिरमार्गी माननेवाले। उसमें कुछ ठिकाना नहीं। मनसुखभाई ! भाई से मिले थे न ? कहा था न।

मुमुक्षु : मैंने तो खास पूछा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूछा था। मुझे खबर है। कहा था। भाई भी श्वेताम्बर को मानते थे। कहा था, मुझे याद है। भाई भी श्वेताम्बर को मानते थे। मनसुखभाई ! मनसुखभाई ने दीक्षा ली थी, उनकी लड़की ने दीक्षा ली थी। हम थे, तब दीक्षा ली थी। दो लड़कियाँ थीं। (संवत्) २००० के वर्ष में। एक मर गयी, बापू ! मार्ग तो दूसरा है, भाई !

साधुपना न ले सके, इसका दोष नहीं है परन्तु साधुपना नहीं है और वस्त्रसहित साधुपना भ्रष्ट होकर मानना, यह बड़ा मिथ्यात्व का पोषण है। देवीचन्दजी ! मार्ग तो ऐसा है, भाई ! शान्ति से, मध्यस्थता से भगवान ने कहा हुआ कुन्दकुन्दाचार्य स्पष्ट करके सभा के बीच बात करते हैं। राग-द्वेष बिना। भाई ! मार्ग तो ऐसा है, हों ! ऐसे सन्त दिगम्बर मुनि आत्मध्यानी, ज्ञानी, जिन्हें आनन्द का उफान अन्दर से आता है। ऐसे, हों ! अकेले नग्न घूमें और कुछ है नहीं, वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं है। समझ में आया ? साधु नग्न होते हैं और उनके लिये बनाया हुआ आहार ले, चौका करके दे, वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं है और भावलिंग भी नहीं है। कोई कहे नग्नमुनि हैं। नग्न तो अनन्त बार हुआ, पशु की भाँति, उसमें क्या हुआ ?

अन्तर राग के विकल्प से भिन्न अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य है, उसका अनुभव और सम्यग्दर्शन हो, तदुपरान्त पश्चात् स्वरूप की स्थिरता का प्रचुर स्वसंवेदन हो, उसे नग्न दशा होती है, उसे यहाँ मुनिपना कहा जाता है। मार्ग तो ऐसा है, भाई! किसी व्यक्ति को, सम्प्रदाय को दुःख हो, यह बात नहीं है और सत्य बात तो ऐसी कौनसी होगी कि जो सबको ठीक लगे? सबको चैन पड़े ऐसी बात कैसी होगी? मार्ग तो यह है। उसकी इसे पहिचान और श्रद्धा करना पड़ेगी।

***भावार्थ* – जिस यथाजातरूप को देखकर अणिमादिक ऋद्धियों के धारक देव भी चरणों में गिरते हैं,...** बड़े देव आकर... आहाहा! जिन्हें आनन्द का सागर अन्दर उछला है। चैतन्य प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का सागर जिनकी दशा में स्थिरता में उछला है, उन्हें वस्त्र-पात्र ग्रहण का विकल्प होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उनके लिये बनाया हुआ आहार-पानी का एक बूँद भी लेने का उन्हें विकल्प नहीं होता। उनकी बात चलती है। समझ में आया? जिन्हें अणिमा आदि छोटा रूप धारण करना हो तो करे, बड़ा रूप धारण करना हो तो करे। देव.. देव.. अणिमादि अर्थात देव, ऐसे भी जिन्हें पैरों पड़ते हैं।

उसको देखकर मत्सरभाव से नमस्कार नहीं करते हैं,... कुन्दकुन्दाचार्य ने यह बात तो मात्र सम्प्रदाय के लिये की है, सत्य को प्रसिद्ध करने के लिये, भगवान का मार्ग ऐसा है, उसको बताने के लिये (की है)। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य थे। महाभावलिंगी सन्त थे, परमेश्वर के पास गये थे। उनकी भी साधुओं से टकरार हो गयी थी। विवाद उठा था न? यहाँ गिरनार... गिरनार। सरस्वती बोलती है। यह पत्थर की सरस्वती बोलती है। सरस्वती बोली कि यही दिगम्बर धर्म है। पहले अनादि का यह है। इसका अर्थ फिर उन्होंने दूसरा किया कि यही अर्थात् कि नये हैं, हम पुराने हैं। आहाहा! अरे! दुनिया वह कुछ... तथापि किया पहले दिगम्बर का। अम्बिका बोली। पत्थर की देवी में से। पुण्यशाली इतने थे कि पत्थर बोले! वह बोले वह सच्चा। आवाज उसमें से निकली, यही दिगम्बर अनादि का है। श्वेताम्बर बाद में निकले हैं। समझ में आया?

यह स्थानकवासी तो अभी पाँच सौ वर्ष हुए। श्वेताम्बर में से निकले हैं। श्वेताम्बर पैंतालीस मानते हैं, ये बत्तीस (सूत्र) मानते हैं और यह तुलसी तो अभी निकले। यह तो

और श्रद्धा से अधिक भ्रष्ट होकर निकले हैं। एक... एक... एक... श्रद्धा भ्रष्ट होकर निकले हुए पन्थ हैं। श्वेताम्बर श्रद्धा भ्रष्ट से निकले, उसमें से स्थानकवासी अधिक भ्रष्ट होकर निकले, उसमें से तेरापन्थी अधिक भ्रष्ट होकर निकले हुए हैं। मार्ग यह है। स्थानकवासी तेरापन्थी, हों! दिगम्बर के तेरापन्थी तो सच्चे पन्थी हैं। कहो, ऐसा मार्ग है। ऐ... रतिभाई! यह बहुत सब तो स्थानकवासी हैं। ऐ... केशुभाई! ये स्थानकवासी हैं। मन्दिरमार्गी कोई-कोई हैं। यह मोहनभाई मन्दिरमार्गी हैं। पक्ष का व्यामोह और बहुत वर्ष के माने हुए पच्चीस-पचास वर्ष के संस्कार हों, वे यह सुने तो उन्हें ऐसा लगे... अर..र..र! इनका ही सच्चा? परन्तु इनका सच्चा अर्थात् स्वरूप ऐसा है। वीतराग के मार्ग में मुनि का स्वभाव ही ऐसा होता है। जिसे तीन कषाय का नाश होकर मुनिपना प्रगट हुआ है, उनकी दशा दिगम्बर ही होती है। उन्हें वस्त्र-पात्र और टुकड़ा ऐसा उन्हें नहीं होता। ऐसा अनादि का जैन वीतरागमार्ग में चलता पन्थ है। समझ में आया?

कहते हैं कि **मत्सरभाव से नमस्कार नहीं करते हैं,...** ऐसे मुनि महाधर्मात्मा। कुन्दकुन्दाचार्य के समय भी सामने उन्हें नहीं मानते थे। यह अमृतचन्द्राचार्य हुए, लो न! ९०० वर्ष पहले। ओहोहो! तीर्थंकर जैसा काम कुन्दकुन्दाचार्य ने किया। अमृतचन्द्राचार्य मुनि दिगम्बर वनवासी, (उन्होंने) गणधर जैसा कार्य किया है। परन्तु सामनेवाले आदर नहीं करते, विरोध करते थे। उस समय। कुन्दकुन्दाचार्य का, अमृतचन्द्राचार्य का (विरोध करते थे)। आहाहा! जिन्होंने अमृत बहाया है। सन्त मुनि-दिगम्बर मुनि महापरमात्मा की आराधना करके अल्प काल में परमात्मा होनेवाले हैं। होनेवाले हैं, कोलकरार से एकाध-दो भव में केवलज्ञान लेनेवाले हैं। समझ में आया? ऐसे भरतक्षेत्र में विचरते थे। पहिचाना नहीं, माना नहीं परन्तु अविनय और अनादर किया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अपने आत्मा का अनादर किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका ही किया परन्तु बाहर से तो (उनका अनादर किया) इसकी दृष्टि में ही बैठा नहीं कि यह वस्तु क्या है? यह वस्त्र लेकर बैठे और मुनिपना सातवाँ गुणस्थान तो आता नहीं। शुद्धोपयोग की अप्रमत्तदशा आनी चाहिए, वह तो आती नहीं तो तू किसका साधू? इतना भी ख्याल नहीं आया। क्योंकि मुनि हो, उसे तो क्षण में अप्रमत्त शुद्धोपयोग आता है। सच्चे मुनि की बात है, हों! अकेले नग्न की नहीं। शुद्धोपयोग

ऐसे ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान सब भूल जाए। और उसकी टीका की है इस जैन गजट में। इन लोगों ने शुद्धोपयोग को सरल बनाया। चौथे-पाँचवेंवाले को शुद्धोपयोग होता है। शुक्लध्यान। शुद्धोपयोग अर्थात् शुक्लध्यान (ऐसा) उसने लिखा है और शुभोपयोग होवे तो धर्मध्यान। मुनि होवे उसे, ऐसा वे लोग मानते हैं। मुनि न हो परन्तु शुद्धोपयोगी शुक्लध्यानी अभी चौथे गुणस्थान में होता है। अरे! गजब करते हैं न! जैन गजट में यह लेख है। आत्मज्ञान का साथ में लिखा, यह एक लेख है। शुद्धोपयोग अर्थात् शुक्लध्यान और शुभोपयोग अर्थात् धर्मध्यान। अरे भाई! शुभराग है, वह धर्मध्यान भी नहीं है और शुद्धोपयोग, वह शुक्लध्यान हो तो ही होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! सातवें (गुणस्थान) तक धर्मध्यान है। चौथे गुणस्थानवाले को शुद्धोपयोग होता है तो शुक्लध्यान तो नहीं।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य को नहीं था?

पूज्य गुरुदेवश्री : था न, अकेला शुद्धोपयोग ही था। मार्ग बहुत अलग प्रकार (का है)। यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य को जो बाहर का अनुभव हुआ था, वह बात रखी है। ऐसा मार्ग परमेश्वर का है। हम सच्चे मुनि हैं और दुनिया को मार्ग की सच्ची बात करते हैं। यथानुभूत मार्ग, आता है या नहीं? (प्रवचनसार) चरणानुयोग (चूलिका) में आता है। हम यथानुभूत मार्ग के यह प्रणेता रहे, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। वीतराग ने कहा हुआ साधुपद ऐसा होता है और उसमें विकल्प किस प्रकार के होते हैं, बाहर की दशा कैसी (होती है), उसके यथानुभूत (प्रणेता) यह रहे। ऐसों को मान्य नहीं रखा। इसलिए स्पष्ट करने के लिये साधुपद की जैनदर्शन में कैसी उत्कृष्ट दशा होती है, बाहर संयोग का अभाव कितना होता है, उसके वर्णन के लिये बात करते हैं। समझ में आया?

मत्सरभाव से नमस्कार नहीं करते हैं, उनके सम्यक्त्व कैसा? महा परमेश्वर जैसे मुनि थे। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी, भूतबलि। उस समय तो श्वेताम्बर नहीं थे। गिरनार में धरसेनाचार्य नग्न दिगम्बर महामुनि अन्तिम स्थिति में दो मुनियों को बुलाया था। पुष्पदन्त-भूतबलि, जिन्होंने यह षट्खण्डागम बनाया। वीतरागी मुनि थे, ऐसा धवल में पाठ है। मोह और राग-द्वेषरहित ऐसे मुनियों को दिया और उन्होंने पढ़ाया। कण्ठस्थ किया। पूरा हुआ तो देवों ने-व्यन्तरदेवों ने, वहाँ आसपास गिरनार में रहते हों न, उस समय। यह तो दो हजार वर्ष पहले की बात है। देवों ने उसका महोत्सव

किया। षट्खण्डागम है न यह ? धवल, महाधवल यह तो टीका है। भगवान की तीर्थंकरदेव की वाणी। केवलज्ञान में (जो आया), उस वाणी के सब शास्त्र हैं। षट्खण्डागम। समझ में आया ? और कुन्दकुन्दाचार्य ने पश्चात् यह समयसार बनाया। यहाँ तो मध्यस्थ होकर, राग-द्वेषरहित होकर कुछ समझना चाहे तो (समझ में आये ऐसा है)। देव का स्वरूप, चारित्रवन्त गुरु का स्वरूप, भगवान ने कहे हुए अनेकान्त तत्त्व के शास्त्र का स्वरूप (समझे)। समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं, अरे! **उनके सम्यक्त्व कैसा? वे सम्यक्त्व से रहित ही हैं।**

गाथा-२६

अब कहते हैं कि असंयमी वंदने योग्य नहीं है –

अस्संजदं ण वन्दे वत्थविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णि वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि।।२६।।

असंयतं न वन्देत वस्त्रविहीनोऽपि स न वन्द्येत।
द्वौ अपि भवतः समानौ एकः अपि न संयतः भवति।।२६।।

नहिं वंद्य वस्त्र-विहीन केवल असंयत भी वंद्य नहिं।
दोनों हि एक समान उनमें एक भी संयत नहीं।।२६।।

अर्थ – **असंयमी को नमस्कार नहीं करना चाहिए। भावसंयम नहीं हो और बाह्य में वस्त्र रहित हो वह भी वंदने योग्य नहीं है, क्योंकि ये दोनों ही संयम रहित समान हैं, इनमें एक भी संयमी नहीं है।**

भावार्थ – **जिसने गृहस्थ का भेष धारण किया है, वह तो असंयमी है ही, परन्तु जिसने बाह्य में नग्नरूप धारण किया है और अंतरंग में भावसंयम नहीं है तो वह भी असंयमी ही है, इसलिए यह दोनों ही असंयमी हैं, अतः दोनों ही वंदने योग्य नहीं हैं अर्थात् ऐसा आशय नहीं जानना चाहिए कि जो आचार्य यथाजातरूप को दर्शन कहते आये हैं, वह केवल नग्नरूप ही यथाजातरूप होगा, क्योंकि आचार्य तो बाह्य-अभ्यंतर**

सब परिग्रह से रहित हो उसको यथाजातरूप कहते हैं। अभ्यंतर भावसंयम बिना बाह्य नग्न होने से तो कुछ संयमी होता नहीं है – ऐसा जानना।

यहाँ कोई पूछे – बाह्य भेष शुद्ध हो, आचार निर्दोष पालन करनेवाले के अभ्यंतर भाव में कपट हो उसका निश्चय कैसे हो तथा सूक्ष्मभाव केवलीगम्य हैं, मिथ्याभाव हो उसका निश्चय कैसे हो, निश्चय बिना वंदने की क्या रीति ?

उसका समाधान – ऐसे कपट का जबतक निश्चय नहीं हो तबतक आचार शुद्ध देखकर वंदना करे उसमे दोष नहीं है और कपट का किसी कारण से निश्चय हो जाय तब वंदना नहीं करे, केवलीगम्य मिथ्यात्व की व्यवहार में चर्चा नहीं है, छद्मस्थ के ज्ञानगम्य की चर्चा है। जो अपने ज्ञान का विषय ही नहीं, उसका बाधनिर्बाध करने का व्यवहार नहीं है, सर्वज्ञ भगवान की भी यही आज्ञा है। व्यवहारी जीव को व्यवहार का ही शरण है।।२६।।

(नोट ह्न एक गुण का दूसरे आनुषंगिक गुण द्वारा निश्चय करना व्यवहार है, उसी का नाम व्यवहारी जीव को व्यवहार का शरण है।)

गाथा-२६ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि असंयमी वंदने योग्य नहीं है –

अस्संजदं ण वन्दे वत्थविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णि वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि।।२६।।

***अर्थ* – असंयमी को नमस्कार नहीं करना चाहिए।** जिसे भाव संयम नहीं है, मात्र असंयमी है, उसे साधुरूप से, चारित्रस्वरूप से, गुरुरूप से वन्दन नहीं हो सकता। समझ में आया ?

मुमुक्षु : बाह्य वस्त्ररहित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य वस्त्ररहित हो तो भी वन्दनयोग्य नहीं है। नग्न मुनि हुए, वस्त्र न रखे परन्तु अन्दर में आत्मज्ञान और आत्मदर्शन का भान न हो। यह हम दया पालते हैं, हम व्रत पालते हैं, ऐसे कर्ता होता है और हो दिगम्बर, वह भी मिथ्यादृष्टि है, दिगम्बर

होने पर भी (मिथ्यादृष्टि है)। समझ में आया? उसे अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प उठते हैं, उसका वह कर्ता होता है, हम करते हैं, हम करते हैं। वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। दिगम्बर हो तो भी मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया?

क्योंकि ये दोनों ही संयम रहित समान हैं,... पहला तो प्रत्यक्ष असंयमी है। बाह्य में वस्त्र-पात्र रखे, स्त्री-पुत्र हो और संयमी हो। तथा वह वस्त्र-पात्र नहीं रखता और अन्दर में भावसंयम-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कुछ भान भी नहीं। अकेला नग्नपना लेकर बैठा है। कहते हैं कि दोनों संयमरहित हैं। **इनमें एक भी संयमी नहीं है।** लो! किसे ऐसा विचार करना है? निर्णय का समय भी कहाँ है? जिस सम्प्रदाय में जन्मा, उच्छरियो उसे मानकर बैठा, परीक्षा किये बिना। दिगम्बर में जन्मा तो कहे अपना सच्चा। परन्तु मार्ग किस प्रकार है, इसकी कुछ खबर नहीं होती, उसमें वह जन्मा। जैनकुल में समुप्पन्न जिस कुल में जन्मा और जिसका संग हुआ, उसे माना। जाधवजीभाई! समझ में आया?

***भावार्थ* – जिसने गृहस्थ का भेष धारण किया है, वह तो असंयमी है ही,..** समझ में आया? स्त्री, पुत्रवाला हो, वस्त्र-पात्रवाला हो, वह तो प्रत्यक्ष संयमरहित है ही। उसे संयम नहीं होता। असंयमी है। **परन्तु जिसने बाह्य में नग्नरूप धारण किया है..** बाह्य से नग्न दिगम्बर हुआ **और अंतरंग में भावसंयम नहीं है...** अन्तर सम्यग्दर्शन, आत्मा का अनुभव और छठवें गुणस्थान में क्षण-क्षण में जो आनन्द की, शुद्धोपयोग की स्थिरता आवे, वह तो है नहीं। आहाहा! दो-दो घण्टे, चार-चार घण्टे, छह-छह घण्टे सोवे, कहते हैं वे कैसे साधु? भले नग्न हों। चार-छह घण्टे नींद ले, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। मुनि को तो ऐसी दशा प्रगट हुई होती है, जिन्हें एक पौन सैकेण्ड के अन्दर जरा निद्रा आती है। शीघ्र... अप्रमत्तदशा आ जाती है। यह आता है या नहीं? छहढाला में, 'पिछली रयन...' पिछली रात्रि में। पहले के तीन पहर (में) नहीं। यह तो जहाँ अंधेरा हुआ तो सो जाए। अरे! इसके द्रव्य का भी ठिकाना नहीं है। पिछली रात्रि में, वह भी एक आसन से। एक ओर ऐसा होवे तो वहाँ का वहीं रहे। ऐसा का ऐसा, फिरना—ऐसा नहीं। ऐसी मुनि की दशा होती है। भावलिंगी सन्त। समझ में आया? यह तो रतनचन्दजी ने लिखा है, हों! छठे गुणस्थान की स्थिति पौन सैकेण्ड के अन्दर होती है।

उसमें से अपने लिख लिया था न? आता है न? है उसमें, धवल में। पृष्ठ में लिखा है। लेख में आया है न, समाचार पत्र में आया है। सच्चे सन्त तो ऐसे क्षण में आनन्द का शुद्धोपयोग, क्षण में विकल्प आता है। उनकी दशा... ओहोहो! धन्य अवतार! धन्य दशा! धन्य मोक्ष का यह मार्ग!! समझ में आया?

कहते हैं **अंतरंग में भावसंयम नहीं है तो वह भी असंयमी ही है,..** भले नग्न दिगम्बर हो, परन्तु अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की कुछ खबर भी नहीं। नग्न हो गये और भिक्षावृत्ति से (गोचरीवृत्ति से) खाये, वे भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? भारी कठिन काम। यह तो नाड़ी पकड़कर बात करते हैं। कि भाई! वीतराग का मार्ग ऐसा है। नग्न होकर घूमे, इसलिए साधु है (ऐसा नहीं है)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बारे ग्रीवक उपजायो।' समझ में आया? ऐसा पाठ कहा न? **'वत्थविहीणोवि तो ण वंदिज्ज'** वस्त्ररहित हो तो भी वन्दनयोग्य नहीं है। अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान का भान नहीं। यह क्रिया मैं करता हूँ, देह की क्रिया मेरी है, यह उपदेश देता हूँ, यह मेरा उपदेश मैं कर सकता हूँ, वह वाणी का कर्ता है, वह तो असंयमी है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए यह दोनों ही असंयमी हैं, अत: दोनों ही वंदने योग्य नहीं हैं...**

यहाँ आशय ऐसा है अर्थात् ऐसा आशय नहीं जानना चाहिए कि... ऐसा नहीं जानना कि **जो आचार्य यथाजातरूप को दर्शन कहते आये हैं,...** यथाजात को दर्शन कहा है न? पहले से कहते आये हैं न? **'दंसणमग्गं वोच्छामि'** यथाजात। भगवान ने जैसा आत्मा कहा, वैसा जिन्हें अन्तर में आनन्द की लहर से प्रगट हुआ है। आहाहा! और बाहर में नग्नदशा है। आभ्यन्तर यथाजात और बाहर यथाजात। चरणानुयोग में आता है, भाई! आता है न? दोपना अंगीकार किया। यथाजात शब्द आता है। दोनों यथाजात। चरणानुयोगसूचक (चूलिका) प्रवचनसार। एक भाव यथाजात, एक विकल्प—महाव्रतादि का विकल्प उठता है, वह छिलका है, राग है और विकार है, जहर है। उससे रहित आत्मा के सम्यग्दर्शन उपरान्त आत्मा की लहर जिसे उठती है। समझ में आया? वह यथाजात। अन्दर जैसा है वैसा अन्दर में-पर्याय में प्रगट हुआ। आहाहा!

नियमसार में कहते हैं कि अरे! केवली और मुनियों में अन्तर माने, वह मूढ़ है। वीतरागभाव दोनों को वर्तता है, ऐसा कहते हैं। जरा सा अन्तर पहले कहा, परन्तु फिर

अन्तर निकाल दिया। वीतराग। मुनि अर्थात्... आहाहा! धन्य अवतार। समझ में आया? मुनि अर्थात् वस्त्र छोड़ दिये और नग्न हो गये और गोचरी करके खाये और चले, इसलिए साधु है? किसने कहा? जिसे स्वरूप अन्तर राग से रहित पूरा परमात्मा स्वयं सिद्धसमान स्वरूप है। उसे राग और विकल्प की वृत्ति से भिन्न करके, जिसने आत्मा के आनन्द के स्वाद अन्तर में लिया है, तदुपरान्त अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन वर्तता है।

कुन्दकुन्दाचार्य (समयसार) पाँचवें श्लोक में (गाथा में) कहते हैं। प्रचुर स्वसंवेदन है, उसमें से हमारे इस समयसार का-वैभव का जन्म है। हमारे वैभव से हम कहेंगे, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। हमारा वैभव कैसे प्रगट हुआ है? प्रचुर स्वसंवेदन। अहो! अतीन्द्रिय भगवान आत्मा का उग्र स्वसंवेदन। क्योंकि चौथे गुणस्थान में भी संवेदन-आत्मा के ज्ञान का संवेदन तो होता है परन्तु प्रचुर स्वसंवेदन—ऐसा शब्द प्रयोग किया है। अहा! गजब बात करते हैं! हमें प्रचुर स्व-अपना सं—सं-प्रत्यक्ष ऐसा आनन्द का वेदन, पंच महाव्रत के विकल्प—रागरहित आनन्द का हमें वेदन वर्तता है कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा आशय नहीं जानना चाहिए कि जो आचार्य यथाजातरूप को दर्शन कहते आये हैं, वह केवल नग्नरूप ही यथाजातरूप होगा,... देखा? बाहर से सब कहा न? अकेले समकित की बात नहीं। दर्शन कहने पर यह कि जिसे आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—तीनों, वीतरागता, पंच महाव्रत के विकल्प और नग्नदशा (होती है), वह जैन का दर्शन है, वह जैन का रूप और वह जैन का मत है। समझ में आया? **वह केवल नग्नरूप ही यथाजातरूप होगा,..** ऐसा नहीं है। **क्योंकि आचार्य तो बाह्य-अभ्यंतर सब परिग्रह से रहित हो, उसको यथाजातरूप कहते हैं।** आहाहा! लोग मध्यस्थ होकर पढ़ते नहीं, विचार नहीं करते, तुलना नहीं करते और ऐसे के ऐसे अनादि से अन्धे की तरह चलते जाते हैं।

आचार्य तो बाह्य-अभ्यंतर सब परिग्रह से रहित.. बाह्य में वस्त्र-पात्र का त्याग और अन्तर में मिथ्यात्व और राग का त्याग। आहाहा! राग की एकताबुद्धि पड़ी है और फिर बाहर का नग्नपना लिया, वह कहाँ से आया? अभी मिथ्यात्व का तो त्याग नहीं

और बाहर का त्याग उसे कहाँ से आया ? समझ में आया ? पहले तो मिथ्यात्व का त्याग चाहिए कि आत्मा आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु है। जो विकल्प उठे दया, दान, व्रत का, भक्ति का राग है, वह तो आस्रव है, बन्ध है, दुःख है, जहर है। उससे भिन्न अन्दर भगवान के भान बिना, अनुभव बिना, समकित बिना मिथ्यात्व का त्याग नहीं हो सकता। अभी मिथ्यात्व का त्याग नहीं और बाहर के त्याग इतने अधिक जमा दिये। नग्नपना और स्त्री, पुत्र छोड़ा, यह कहाँ से आया ? कहते हैं। समझ में आया ? भारी कठिन काम है। यहाँ तो जंगल में हैं, इसलिए कोई व्यवधान नहीं। सम्प्रदाय में तो खड़े नहीं रहने दे। सुजानमलजी !

(संवत्) १९८५ में एक शब्द कहा, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह धर्म नहीं है। हाय.. हाय.. छोड़ते हैं.. छोड़ते हैं.. १९८५ में। ४१ वर्ष हुए। बड़ी सभा थी, बोटाद। हों ! दो बोल साधारण कहे, हों ! पंच महाव्रत है, वह आस्रव है। पंच महाव्रत के भाव, वह विकल्प की वृत्ति है कि ऐसा नहीं मारूँ, ऐसा करूँ, वह तो वृत्ति राग है, आस्रव है और जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह धर्म नहीं है। हाय.. छोड़ते हैं.. छोड़ते हैं.. कहकर वह पाठ से उठ गया। उस समय सभा में तो जगजीवनजी थे, यह सब माननेवाले। बहुत भोले साधु हैं, बहुत भोले, ऐसा करके यह सब माने। नहीं ?

मुमुक्षु : रंक जैसे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रंक यह कहने का हेतु था। ध्रांगध्रा के राजा थे न ? उन्हें दस्त का बहुत होता था। इसलिए रथयात्रा निकली हो तो दस्त के लिये जाना (पड़े) उसका करना क्या ? घोड़ागाड़ी में रखते थे। वह डालकर दस्त को जाते थे। उसे ऐसा नहीं होता था, इसलिए उसे रंक कहते थे। ध्रांगध्रा के दरबार को दर्द ऐसा हो। वेग हुई हो दस्त की तो एक मिनिट नहीं रोक सके। ध्रांगध्रा का दरबार। वह राजा था, उसे भी ऐसा होता था। इसलिए राजा कहते, यह सब भोले-भोले हैं, ऐसा करके अच्छे हैं, अच्छे हैं (ऐसा माने) ऐई ! खीमचन्दभाई ! यह बड़े... तुमने देखे थे या नहीं ? आहाहा !

हे वीतराग ! तेरे पन्थ में राग का भाग जिसे रहा, उसे धर्म माने, वह वीतरागी जीव नहीं है, वह जैन नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? तेरा भगत... वीतराग को कहते हैं, तेरा भगत तो वीतरागता का भगत है, प्रभु ! वह कहीं राग का भगत नहीं है। यहाँ तो उत्कृष्ट

बात कहनी है। अहो! जिसने नग्नपना धारण किया है, परन्तु बाह्याभ्यन्तर परिग्रहरहित नहीं है तो उसे यथाजात नहीं कहते।

अभ्यंतर भावसंयम बिना बाह्य नग्न होने से तो कुछ संयमी होता नहीं हैह्न ऐसा जानना। लो, **ऐसा जानना।** ऐसा लिखा है, हों! ऐसा जानना, दो शब्द। जिसे अभ्यन्तर वीतरागी दशा शुद्धोपयोग में झूलता है। पंच महाव्रत का विकल्प तो शुभराग है। आहाहा! उसे वीतरागमार्ग में मुनि संयमी कहते हैं। क्षण में उसे शुद्धोपयोग में अन्दर आनन्द में उपयोग आ जाता है। क्षण में छठवाँ (गुणस्थान) आ जाता है। ऐसे अभ्यन्तर परिग्रहरहित (होता है)। **अभ्यंतर भावसंयम बिना बाह्य नग्न होने से तो कुछ संयमी होता नहीं हैह्न ऐसा जानना।** समझ में आया?

यहाँ कोई पूछे ह्न बाह्य भेष शुद्ध हो, आचार निर्दोष पालन... पालन करता हो। बाह्य भेष नग्न हो। शुद्ध आचार आगम प्रमाण व्यवहार की क्रिया (पालन करता हो)। उसके लिये बनाया हुआ आहार-पानी न ले, बराबर निर्दोष क्रिया करता हो **अभ्यंतर भाव में कपट हो...** अभ्यन्तर में मुनिपना हो नहीं। मुफ्त में बाहर कपट से मनवाता हो, **उसका निश्चय कैसे हो...** उसका निर्णय किस प्रकार हो। **तथा सूक्ष्मभाव केवलीगम्य हैं, मिथ्याभाव हो, उसका निश्चय कैसे हो, निश्चय बिना वंदने की क्या रीति?**

उसका समाधान – ऐसे कपट का जबतक निश्चय नहीं हो, तबतक आचार शुद्ध देखकर वंदना करे उसमे दोष नहीं है... शुद्ध, आचार शुद्ध चाहिए। ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार, वीर्याचार, (चारित्राचार) जो पाँच व्यवहार हैं। यह निर्दोष होना चाहिए। पाँच में गड़बड़ होवे, वह तो व्यवहार से भी आदरनेयोग्य नहीं है। समझ में आया? गजब मार्ग, भाई! जैन का बाबा होना कठिन लगता है, (ऐसा) कहते हैं। नानजीभाई! **कपट का किसी कारण से निश्चय हो जाय तब वंदना नहीं करे,...** फिर जाने कि यह तो बाह्य वेश की क्रिया के कर्ता हैं, वस्तु-वस्तु है नहीं, तो आदर नहीं करे। इसकी विशेष बात है...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)